पहाड़ बूढ़े नहीं होते

डा० कैलाश जोशी

प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन
चौडा रास्ता, जयपुर-302 003

वर्ष 1987

मूल्य 30-00

मुद्रक : गौरव प्रिन्टर्स, जयपुर

पहाड बूढे नही होते ☐ कविता संकलन ☐ डा० कैलाश जोशी

दो शब्द

श्री कैलाश जोशी का राजस्थान की युवा-पीढ़ी के कवियों में अपना विशेष स्थान है। उनकी कृति 'पहाड़ बूढ़े नहीं होते' की कविताएं यथार्थपरक होते हुए भी सवेदनाशून्य और अकलात्मक नहीं हैं। उनके बाहर का यथार्थ भीतर की अनुभूति से जुड़ा हुआ है और यही कारण है कि इनकी कविताओं में गद्यात्मकता होते हुए भी एक लय का सौन्दर्य निहित है। कवि की भाषा सहज और प्रवाहमयी है। इनकी कविताओं में मस्तिष्क और हृदय का समन्वय है। परिवेश से सम्बद्ध होने पर भी इनका रचनाक्रम व्यक्तिगत है। पर कवि का व्यक्ति इतना संवेदनशील है कि उसमें समाज स्वयं समाहित है। 'पहाड़ बूढ़े नहीं होते' की कविताओं में सप्रेषण की शक्ति है, क्योंकि वह उन सभी द्वन्द्वों को अनुभूत करता है जो एक आम आदमी के द्वन्द्व हैं। वर्तमान के प्रति सजग रहता हुआ भी कवि शाश्वत मानवीय मूल्यों को अनदेखा नहीं करता यह उसकी विशिष्ट उपलब्धि है। परिवेश का यथार्थ समय के साथ परिवर्तनीय है, पर शाश्वत मूल्यों में कोई बदलाव नहीं होता। केवल यथार्थ से प्रतिबद्ध रचनाकार समग्र जीवनदृष्टि से वंचित रहता है और उसका काव्य खण्ड-सत्य को प्रतिबिम्बित करनेवाला जड़ दर्पण मात्र बन कर रह जाता है। श्री कैलाश जोशी एक सृजनधर्मा कवि हैं और उनका चेतन पुरुष अनुभव एवं चिन्तन के ऋत के साथ समरस है।

कलकत्ता

कन्हैयालाल सेठिया

यह संकलन......

मुझे अधिक कुछ नही कहना है। इसकी न तो आवश्यकता है और न गुंजाइश। मेरे तीन वर्षों के अनुभूनि, विचार और राग का संघर्ष है—यह सकलन। इन कविताओ मे एक ओर जहाँ आपको प्रकृति के तरल बिम्ब और मानव-मन को जानने की गहन जिज्ञासा मिलेगी, वहीं दूसरी ओर कविताओ के वैचारिकपन के उपरान्त भी उनमे राग तत्त्व के प्रति मोह मिलेगा।

यह मेरी पीड़ा भी है और आह्लाद भी कि मैं अपने चिन्तन को किसी विचारधारा-विशेष का हिमायती नही होने देता। मुझे सदैव लगता है कि सारी विचारधाराएं मानव के भीतर ही निवास करती हैं और उसी के बौद्धिक विकास को नई दिशाएं देने का प्रयास करती हैं। ऐसी ही सारी विचारधाराओं के अत्यन्त बारीक और मसृण तन्तुओ से मेरी कविताएं स्वरूप ग्रहण करती हैं।

सकलन की कविताओ का सम्पादन नही किया है। मस्तिष्क के सहज प्रवाह मे जिस क्रम मे कविताए रची गई हैं, उसी नैसर्गिक-सम्पादन मे वे यहाँ हैं।

सकलन को यह स्वरूप मिलने का बहुत कुछ श्रेय मेरी मित्र-मण्डली को जाता है। मेरे अभिन्न डॉ० सत्यनारायण व्यास, आनन्द कुरेशी आदि ने जो इन रचनाओ के प्रथम श्रोता भी हैं और कही कही वैचारिक संस्पर्श से रचनाओं को नई चेतना देकर परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने के सहयोगी भी हैं। इन मित्रो के लिए आभार जैसा बोध मुझे होता ही नही।

अन्त मे सम्माननीय भाई ताराचन्द जी वर्मा का मैं अन्तःकरण से आभारी हूँ, जिन्होने सहर्ष मेरे इस ताजा सकलन को सुन्दर रूप मे प्रकाशित कर कविता-प्रकाशन मे छाई उदासी को तोड़ा है। यह उनकी कविता के प्रति आस्था का सूचक है।

26-1-86 कैलाश जोशी

डूंगरपुर

चित्रलेखा और विनम्र

के

लिए

अनुक्रम

सृजन-प्रक्रिया पर बयान : चार कविताएं

(1) रचना के जन्म की संभावना

केवल शब्द बच गए हैं
जो अब भी मुखौटा नही चढ़ाते।
ये वर्णांगी आज भी
जलते हैं कन्दील से,
कभी कभी तो गिरते हैं बिजली से और
कभी टूटते तारे की तरह
रोशनी की लकीर छोड़ते हैं।
रचना की पृष्ठभूमि मे
ऐसे ही अनेक शब्द स्पर्धा करते हैं
सर्जक का मस्तिष्क संग्रहालय होता है इस समय।
इस तरह उतरे हैं शब्द :
फूल पर जैसे मंडराती हैं तितलियां
जैसे गंध से मिठाई पर आती हैं चींटियां
हरे भरे खेत को देखकर जैसे
दौड़ती आती हैं गायें
किसी शिवाले के खुले आंगन मे प्रातः
अनाज फेंकने पर जैसे आते हैं कबूतर
किसी तलैया मे भुने चने डालने पर
जैसे झपटती हैं मछलियां।
इस जुलूस से
विशिष्ट और अनुकूल शब्दों का चयन
आसान नहीं।

— 'पहाड़ बूढ़े नहीं होते' / 1

जैसे मधुमक्खी के छत्ते में रानी को पहचानना
सहज नहीं।
पर अनेक व्यंजनों में से प्रिय व्यंजन को हम
जैसे ढूंढ लेते हैं, वैसे ही
रचनाकार का वैयक्तिक परिवेश और
अजाने; जन्म-जन्मांतरों के संस्कार
अनायास ही खोज लेते हैं
कुछ शब्दों को।
अन्वेषित ऐसा शब्द-समूह
जब आकर
तन्द्रिल विचारों पर दस्तक देता है
तब कविता का भ्रूण
आकार लेना प्रारम्भ करता है।
इस तरह बनती है संभावना
किसी रचना के जन्म की।

(2) बिम्ब रचते हैं : रागात्मक मंत्र

विचारों के अनेक आसन्न सूत्र
बिम्बों की जाने कितनी संभावित शृंखलाएं
अवचेतन के कालपात्र में गड़ी पड़ी रहती हैं।
वैचारिक और काल्पनिक सृष्टि के
ये अमूर्त सौन्दर्य-मानक
मन की धरती में संस्कारित होकर
समष्टि अवचेतन का स्पर्श करते हुए
तरलीभूत होकर
शरीर ग्रहण करने की लालसा में
अतृप्त आत्माओं की तरह भटकते रहते हैं

यही भटकन जब घनीभूत होकर
सायरन सी बजने लगती है भीतर
तब विचार या बिम्ब के उत्पन्न होने की
स्थितियां निर्मित होती हैं।
शब्दों को अपने रक्त मे रंगते हुए
विचारों को अपने प्राणो की ऊष्मा देते हुए
बड़े विकल भाव से रचनाकार
तब निराकार बिम्बो को
साकार कर पाता है।
केवल सर्जक ही जानता है कि
यह प्रक्रिया कितनी दुष्कर है।
इस तरह वह बिम्बों की रचना करता है;
जैसे पौधा फूल की रचना करता है
मकड़ी जैसे जाला बुनती है
ग्रासमान इन्द्र-धनुष रचता है जैसे
जैसे बया घोंसला बनाती है
सीप जैसे मोती का निर्माण करती है।
इस तरह—
पार्वती के लास्य से मोहक बिम्ब
प्रखर विचारों को रागात्मक मंत्र का रूप देते

(3) जब कविता लिखता हूं

मैं कथा का स्रष्टा नही
ध्वनि का ज्ञाता भी नही
चिकित्सक नही शब्दों का
अर्थ का जादूगर नहीं
रंगों का मर्मज्ञ भी नहीं।

पर जब जब लेखन की आतरिक पीड़ा मे होता हूं तो
गंध सा उड़ता हूं
पानी सा बहता हूं
कपड़े सा धुलता हू
खुद से लडता हूं
बीज सा अकुरित होता हूं।
फिर भी चिन्तक बनकर महसूस करता हूं कि
रचना के समय मे—
जो जडो से पानी खींच कर
पत्तो तक पहुचाये, वह पौधा होता हूं,
बादल बनकर उड रहा हो
वह समुद्र होता हूं.
पत्थर ढोता
कांपती टांगो वाला मजदूर होता हूं,
घूप मे खेत की मेड़ पर बैठा
थका किसान होता हूं,
दर्द के पखो पर उड़ता
अपना आसमान तलाशता पंछी होता हूं।
सृजन-प्रक्रिया की पीडा मैं
किस रूप मे नहीं झेलता ?
वह लकडी जिसे कटने का दुख पीना है
वह वाद्य जिसे अभी तारो मे बिंधना है
वह नृत्य जिसे ताल मे ढलना है
वह पत्थर जिसे तराश का दर्द सहना है
वह मिट्टी जिसे आकार मे ढलने की पीड़ा से गुंजरना है
और सर्जक के मन की नियति है यह कि
मन तवे पर रोटी सा सिकता है
राग की जमीन पर हल सा चलता है

भावना के खेत में शब्द धान सा पकता है
एहसास की भट्टी मे विचार किसी धातु के माफिक ढलता है
अर्जित अनुभूतियों का अर्क तेल सा जलता है।
इस तरह—
अघोषित अनेक मोर्चों पर
युद्ध लड़ती मेरी कविता
लावा तो उगल सकती है;
इतर एषणाओं की तुष्टि
वह कैसे कर सकती है,
मुझको ऐसा ही लगता है?
जब कविता लिखता हूं।

(4) कला करती है परिष्कार

संवेदना के वैविध्य से
कला उत्पन्न होती है,
रुचि, अभ्यास और आस्था हमें
कैलातीत कला जगत में स्थापित करते हैं
व्यक्ति की इच्छाएं ही कला को बहुरंगी बनाती हैं,
अनुभूति के शिखर से
कला के कई मार्ग निसृत होते हैं,
आंतरिक व्यक्तित्व के अनुरूप ही हम
कला के मार्ग का चयन करते हैं। यथा :
चित्रकार की तूलिका में
रंगों का विलास निवास करता है,
उसकी आत्मा पर सौन्दर्य की जो छाप पड़ती है;
उससे वह करता है; नये रंगों का निर्माण।
रंग मिश्रण की अद्भुत निपुणता ही
संसार को रंगीन सम्मोहन की

कलात्मक वीथियों का परिचय देती है।
स्वरों की प्रकृति का कैसा गहन ज्ञान
गायक को होता है?
जब वह राग में मादकता भर कर
तन्वगी कोमल स्वरो का सन्धान करता है तो
प्रकृति भी जैसे हतचेतन होकर बेसुध हो जाती है
जब उसकी राग दुर्धर्ष होती है और वह
उष्ण और कठोर स्वरो को ऊर्जस्वित करता है तो
भूधर भी प्रकंपित हो उठते हैं।

....

शब्दो का स्रष्टा है कवि,
वह शब्दो से मानवीय क्रिया-व्यापार को
मोहक रूप देता है,
जीवन के दर्शन को वह
अभिमंत्रित कर देता है,
बहुरगी प्रकृति के नित नवीन सौन्दर्य को
नये प्रतिमान देता है,
वेदना के गरल को भी
सरस बना कर गेय कर देता है।

....

नर्तक अपने चरणो में, सृष्टि की
सारी गति को उत्पन्न कर
वाद्यों से ध्वनित होने वाली
सगीत की मादक लहरो की गति को भी
परास्त कर देता है।
उसके पाँवो की थिरकन में जैसे
विद्युत नृत्य करती है।

....

संगतराश को पहले गुज़रना होता है
एक अनगढ स्थूल पत्थर के भीतर से।
पत्थर के अनावश्यक विस्तार को
वह अपनी टाँकी से दूरकर
उसे मूर्त रूप देता है।
हर रेखा इतनी जीवन्त कि लगता है
कलाकार ने पाषाण में भी प्राण फूंक दिये हैं,
जीवन्त; ऐसे प्रस्तर खंडों के समक्ष ही तो
मानव को नत-मस्तक होना पड़ता है।

....

इस तरह कलाकार
जीवन को एक नई सूझ देते हुए
अविस्मरणीय बना जाते हैं।
मेरा मानना है कि
पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं के हृदय मे भी
एक कलाकार सोया रहता है
इसीलिए तो वे
कला के प्रदर्शन में हिस्सा लेते हैं और
कलाकार की अनुभूति मे सहभागी होते हुए
व्यथित और हर्षित होते रहते हैं।
इस प्रकार, वे भी जीवन के आह्लाद को
परिष्कृत कर आत्मलीन होने की विद्या
सीख रहे होते हैं।

☐

मन और हम

ऐसी अनेक बातें हैं
जो चेतना के स्तर पर कभी उजागर ही नही हुई।
कई आदिम भाव
हमारे अवचेतन के रेगिस्तान मे
सदैव के लिए दफन रह जाते हैं।
टूटे फर्श और पलास्तर उखड़ी दीवारो से
हमारे सांस्कृतिक मूल्य
उसी स्थिति मे हैं
जैसे कि हम अपने दोष छिपाने के लिए
परनिन्दा का आश्रय ले लेते हैं।
आम आदमी को त्याग की कहानियां अच्छी लगती हैं
जबकि भीतर वह त्याग से नफरत कर रहा होता है।
अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिए वह
अनेक मनोरम कल्पनाओं की सृष्टि कर डालता है।
मनुष्य ने चाहे जितना विकास किया लेकिन
अपने आदिम भावो को वह नही जीत पाया,
भले ही वह अंतर्मुखी होकर गंभीरता का नाटक करता रहा।
सत्य यह है कि धीरे-धीरे वह
कल्पनाजीवी होता चला गया।
सत्य चाहे कुछ हो
हम अपनी कल्पना उस पर मढ कर

बेमानी बहसें

किसी भी अस्पष्ट आकृति में हम
अपनी कल्पना का आरोपण कर
आनंदित होते रहते हैं।
चेतन मन का अचेतन मन को यह
कितना प्रीतिकर प्रतिदान है।
प्रेम को बौद्धिक वस्तु मानते हुए हम
कितनी बेमानी बहसें
घंटो दर घंटो तन्मय होकर करते रहते हैं।
जबकि जीवन के व्यावहारिक धरातल पर
हम अत्यन्त छिछले प्रेम को अपनाते हैं,
छिन्नमस्ता देवी के समान
स्वय का रक्तपान करते रहते हैं।
कहने को विकल्प मे
अनेक सूक्ष्म तर्क हमारे पास शस्त्र रूप मे
विद्यमान होते हैं।
और यह दिलचस्प बात है कि
बरसाती रातो के अंधेरे मे बोलते झींगुर के समान
हम अपनी बेहूदगियो को भी वैयक्तिक करार देते हैं,
जबकि हम किसी अन्य की सफलता को
सफेद कुर्ते मे लगे पान के धब्बे-सा महसूसते रहते हैं।
आत्मविश्लेषण बहुत अच्छी बात है

बशर्ते कि हम प्रति सजग हों—
जैसे कि तेज रफ्तार में दौड़ती अपनी साइकिल की चेन उतर जाने पर
हम किसी को दोष नहीं देते।
क्या किया जाये यदि
कील लगाते समय हथौड़ा कील पर न पड़ कर
हमारी उंगली पर पड़ जाए।
हथौड़े या कील पर दोषारोपण कर हम
अपनी विकृति का परिचय देते हैं।
अपने भीतर को टटोलना—
स्वयं से चर्चा करना—
अपनी ही खोज मे डूबे रहना—
निहायत ही सुन्दर और गहरी बात है,
लेकिन तब—
जबकि—
हम किसी तलघर मे कैद न हों।

□

सांझ मेरे नगर की

धूप के पानी से
नहा रही हैं पहाड़िया
आदिवासी लडकियो की तरह।
किसी बूढे की उचटी हुई नीद-सा
ऊंघता रहता है
पहाडियो के बीच का फैला हुआ अन्तराल।
रेज़र मे पुरानी ब्लेड-सा
अटका हुआ दिन
पहाड़ियो के पीछे
करना चाहता है खुदकशी।
और इस तरह
जलते हुए रावए के
यकायक भूमि पर आकर गिरने जैसी साझ
जलती हुयी
• सिमटती चली जाती है
और मेरे नगर को अधेरा घेर लेता है
सुबह होने तक।

☐

कागदर पुल

कागदर नदी के किनारे
सड़क पर बना यह पुल
इस इलाके का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करता है
किसी "सास्कृतिक शिष्ट मण्डल" के ही माफ़िक।
इस चिन्ता का कोई निराकरण नहीं
पुल यह सोचता रहे कि
जाने कब निराधार यह आसमान सिर पर आ पड़े।
सुख की यंत्रणा और दुःख का उन्माद
कम आवेगमय नही होता
इस सूत्र की व्याख्या करता हुआ वह
भूखे रहकर भी पेट भरने का अहसास कर लेने वाले
सन्यासी की तरह उबासिया लेता रहता है।
जीवन मे उसने जो दृश्य देखे हैं
उन्हे अभिव्यक्ति देने के लिए
उसके भाव बजारों से डोलते है और शब्द
भिक्षुक से भटकते रहते हैं।
जाने कब हमारे भीतर का आदमी मर जाए और
हम खुद की संस्कृति के घृणित सत्य को छिपाने के लिए
अपने ही आगे किसी पर्दे-से लटक जायं, और
सिगरेट पीते हुए आनन्द के आह्लाद मे
अपनी उगलियां जला बैठें।

विचारो के देहान्त के पहले ही
जाने कब हमारी पशुता मे आदमी उग आए
जो यह महसूस करे कि
कायर लोगो से लड़ने का दभ भी
आत्मतोष तो देता ही है।
मन मे अनेक काल्पनिक बोझ लादे
पल्लवविहीन पर्वतीय वृक्ष से कुछ यात्री
पुल पर आते जाते विचार मथन मे खोए रहते हैं कि
क्या करेंगे जब
जडें तना हो जाएगी और पत्ते गाढ़े पड़ने लगेंगे।
या कि
रेत, पानी की सतह तक कट कर खो जाएगी
किस जमीन पर खड़े रहेगे ?
सास्कृतिक चिंतन से ऊबने पर
विषयातर करते हुए पुल यह सकेत देता है कि
प्रकृति और राजनीति में कोई गोपनीय समझौता हुआ हैं
तभी तो
इन दिनों न मौसम का कोई भरोसा है
और न ही राजनीति का,
इच्छानुसार रंग बदलने के अनुबन्ध पर
संभवतः दोनो ने हस्ताक्षर कर दिए हैं।

व्यवस्था

पहले तो व्यवस्था को हम
[illegible]
पेड़ों की फुनगियों पर उड़ती हुई सी
[illegible] है।
[illegible] भी एक व्यवस्था ही है
जो [illegible] है
और मैं [illegible] हुआ
व्यवस्था-विरोधी [illegible] खड़ा रहता हूं।
[illegible] के साथ व्यवस्था का रंग
कब्र पर ढंके कफ़न-सा धीरे धीरे उड़ता रहता है।
सोड़े गाड़कर सड़क को सकरा बना देना भी
उनके महत्व को कम करना है,
संमोहरत सर्पों के समान हम लोग भी
अपनी मान्यताओं में डूबे रहते हैं।
और यह हमारी आदत है कि
व्यवस्था से ऊबने पर
हम अव्यवस्था के लिए भटकने लगते हैं।
प्रत्येक स्थापित व्यवस्था के विरोध में हमारे मन में
युद्ध शब्द मंडराते हैं
ठीक वैसे ही
जैसे चुनाव में विजय के बाद
किसी का जुलूस हो।
यह अलग बात है कि किसी का जुलूस भी
एक नई व्यवस्था के जन्म का प्रमाण है।

साक्षात्कार : मृत्यु से

निकट मित्र के समान
मृत्यु मुझ से सटकर बैठी है ।
आखें कई दृश्य एक साथ देखती हैं
मैं पहली बार महसूस कर रहा हूं ।
इस ध्वनिहीन वातावरण में मेरा जीवन
दर्शनमय हो गया है और भाषा कवितामय ।
विचारो और भावो के मेरे सहयात्रियो,
मेरे कानो में पानी भर गया है और तुम्हारी आवाज मुझे
बडी डूबी डूबी लग रही है ।
एक अनजाना बोझ, उनीदी सी थकान और
विश्राम का भय........
सडक पर लगे गटर के ढक्कन-सा मैं जड़ होता चला जा रहा हूं ।
कुछ आदर्श बुझते हैं बद आखों में
पेड हवा के थपेड़ों से झुकता है, झूलता है, टूटता है पर
हवा से समझौता नही करता, लेकिन
उडती हुयी पतग हवा के झपाटे से यकायक फट जाती है ।
मृत्यु मात्र अहसास है—
मदिर से मूर्ति चोरी हो जाने पर भी झूलते रहने वाले छत्र का ।
दरअसल वह तो पांवदान है जिस पर पैर रखकर
मुझे घर से बाहर निकलना है
घूम आने के लिए ।

आदमी

आदमी कमरे में कई बार
सिगरेट के धुंए-सा घुटता है और कई बार
इस धुंए को हवा तत्काल बहा ले जाती है।
अनेक बार वह कायरता का दम्भ भरने लगता है और
सड़क के "बाइपास" की तरह रेतीला हो उठता है।
वह भावी के लिए अनेक मनोरम स्वैर कल्पनाओं में डूबा रहता है कि
ट्रेन से झांकते हुए आंख में कोयला गिर जाता है और
एक जलता अंधेरा उसके जीवन को सीलने लगता है।
मंजरित होती जीवन की खिड़की में खड़ा वह सोचता है
जिन्दगी में मैंने और कुछ नहीं तो
प्रेम तो नितान्त मौलिक और अद्वितीय ढंग से किया है।
इत्र की महक के समान सारी अनुभूतियां
थोड़ी गंध के बाद उड़ जाती हैं और . .
सूर्यास्त में रेगिस्तान के तट पर खड़ा हुआ हर आदमी
जीवन की विफलताओं को विस्मृत करता हुआ
या तो दबे मन यौवन के अपने प्रेम-स्मरण में डूब जाता है
या फिर
अपने जमाने की प्रशंसा में खो जाता है।

□

पहाड़ बूढ़े नहीं होते

मेरे जीवन के समानान्तर
पहाड़ो की यह श्रृंखला भी चल रही है कि जैसे
यह श्रृंखला हो मेरी ग्रात्मकथा हो,
जीवन से ग्रनेक साम्य होते हुए भी इसकी
कुछ मौलिकताएं हैं
ग्रौर मौलिकता मे सदैव ग्राकर्षण का जबरदस्त गुण होता है।
हम निराशा ग्रथवा ग्रानन्द के ग्रतिरेक मे विचारजीवी हो उठते हैं
जीवन के कठोर पक्ष से कटकर पलायन का मार्ग ग्रपना लेते हैं,
पर सामने खड़े इन पहाडो को
मैंने कभी कल्पनाजीवी नही देखा।
जीवन में ग्रनेक घटनाए ग्रौर दुर्घटनाएं
सडक के उतार–चढ़ाव-सी ग्राती जाती हैं
कई ग्रवसरो को हम ग्रनजाने में ग्रौर कई को प्रमाद में
छोड़ जाते हैं पर ग्रधिकतर हमने ग्रपने ग्रवसरों का
पूर्ण सजगता से लाभ उठाया है।
इन ग्रवसरो से हमने बहुत पाया है ग्रौर कुछ खोया भी है
पर हा, इनका महत्व हमारे लिए ग्रत्यधिक रहा है
ठीक वैसे ही
जैसे दरवाजे के लिए कुण्डे का रहता है,
ग्रौर दूर तक फैले ये पहाड हैं जिन्हें मैंने
कभी ग्रवसरवादी नही पाया।
हम कई बार सच में
जान बूझकर झूठ मिला देते हैं ग्रौर कई बार
ग्रनजाने में झूठ में सत्य उजागर कर जाते हैं

घर मे घुसते ही हम एक आवरण ओढ लेते हैं
और घर से बाहर निकलते समय इस आवरण को उतार कर
दूसरा चोगा धारण कर लेते हैं
हम मित्रो को सदैव इसी आवरण की झलक देते हैं
ह्दय को कभी किसी को नहीं देते.
और ये पहाड हैं कि
खुद सामने हैं, किसी को अपनी परछाईं नहीं देते।
हम आज तक भयमुक्त नही हो पाए
हर कदम पर भय हमें जकड़े है जैसे
जीवन का नियन्ता ही भय है
सम्बन्धो की नीव भय पर है
धर्म की जड मे भय है
मृत्यु-भय की धुरी पर जीवन घूम रहा है
और ये पहाड़—किसी भी आक्रमण का प्रतिकार नहीं करते
भय को कभी अभिव्यक्त ही नहीं करते।
हम सदैव तर्कों के शस्त्र रखते हैं
खुद के अहम् की रक्षा की चिंता मे खोए रहते हैं
अहम् की तृप्ति के लिए हम
घृणित से घृणित कार्य कर सकते हैं,
दूसरे के अहम् को अपने पाव नीचे कुचल कर
खुद के अहम् को स्थापित करना चाहते हैं
जबकि पहाड किसी को बौना नहीं बनाते
यह तो हम हैं कि पहाड़ पर जाकर
दूसरो को बौना देखना पसन्द करते हैं।
छोटे छोटे से लाभों के लिए हम
अनेक अनुबन्ध स्वीकारते हैं
अप्रिय को भी गले लगाते हैं
हमें केवल अपने स्वार्थ की चिंता रहती है

मनुष्य या देश प्राथमिक नहीं है हमारे आगे
हम ही न हुए तो देश का क्या होगा ?
पर पहाड़ो को मैंने कभी प्रकृति से
समझौता करते नही देखा।
चिंतन और चिंता
दोनो ही जीवन के अनिवार्य तत्व हैं
यह अलग बात है कि चिंतन
हम चिंता जितना नही कर पाते।
कल की चिंता हमे आज रात को
स्वच्छंद नीद नही लेने देती
भले ही यह चिंता पद की हो, काम की हो या कुरसी की।
लेकिन पहाड़ को इस बात की कतई चिंता नही होती
कि कल सूर्योदय होगा भी या नही।
जिंदगी को संवारते हमे वर्षों बीत गए
पर जिंदगी है कि अभी नहीं सवरी
अपना पूरा भविष्य, अपनी पूरी कल्पनाएं, अपनी पूरी शक्ति
हम इसको सवारने मे लगाए जा रहे हैं,
हमे पता भी नही अनतः इसका रूप क्या होगा ?
और ये पहाड़ हैं कि
पहली ही वर्षा में अपना शृंगार कर लेते हैं
पहाड़ो के पेड़ अपना रंग ही बदल डालते हैं और
पूरी रेत बहकर चट्टानें चमकने लगती हैं
बर्फ पिघलकर झरनो मे बदल जाती है और
धूप छाया का नृत्य आर्द्र पठारों की शृंखला पर
शोख रंगों-सा छिटक आता है।
हम ताउम्र अपने भविष्य के लिए
भटकते रहते हैं
वह भविष्य जो किसी ने नही देखा।

हम जीवन भर भविष्य के दुःखों की कल्पना कर
उसे बहुत गाढ़ा और अभेद्य बना देते हैं,
जीवन का श्रेष्ठ उसके लिए संग्रह कर
वर्तमान को प्रभावग्रस्त बनाए रखते हैं
और दूर तक फैली पहाड़ों की ये श्रेणियां
भविष्य की चिंता कभी नहीं करतीं
चाहे इन पहाड़ों में कितनी ही कंदराएं हों,
कितने ही अंतराल हों, कितना ही शैवाल हो
कितनी ही दरारें हों।
हम किसी को कुछ नहीं दे पाते
और देने की तुष्टि के लिए देते भी हैं
तो पुनर्प्राप्ति की लालसा से मुक्त नहीं हो पाते।
ईमानदारी से हम न अपना सुख बांट सकते हैं और
न ही किसी के दुःख का हिस्सा ओढ़ कर
उसके दुःख को कम कर सकते हैं फिर भी
कुछ लेने और कुछ देने का अभिनय
सृष्टि प्रारम्भ से करती आ रही है
यह भी कैसी तृष्णा है
जबकि पहाड़ हमसे कुछ नहीं लेते
यहां तक कि ध्वनियां भी लौटा देते हैं
शायद यही वजह है कि
पहाड़ कभी बूढ़े नहीं होते
कभी नहीं मरते।

□

हम : छोटे-छोटे संदर्भ

• हम दरअसल
उस दरवाजे जैसे हैं
जो दिन भर मे जाने कितनी बार
खुलते हैं और बन्द होते हैं।

• हम धुआ उगलने वाली
मिल की उन्नतमस्तक चिमनी जैसे हैं
जो वातावरण को सदैव प्रदूषण ही देती है।

• हम रेगिस्तान के
वट वृक्ष हैं
जो आंधी से डरते हैं।

• हम सुनहरे भविष्य के सपनों में डूबे
खाली पड़े बांध हैं
जिनसे कई नहरें निकलनी हैं।

• हम लंगड़े आदमी के कंधो पर सवार बच्चे हैं
जो उसकी विजय हेतु नारे लगाते रहते हैं और
गिर पड़ने के भय को भूले रहते हैं।

□

कलाजीवी जंगल

विकास के सभी चरणों में अनभिज्ञ
कला के आदिम स्रोत जंगल
कभी नहीं सोते।

सूखे और हरे भरे वृक्ष
छितराए या गुँथे हुए
टहनियों और तनों में
मूर्तिशिल्प की कितनी दीर्घाएं समेटे
अनजान खड़े हैं।

रंग-संयोजन का अद्वितीय विस्तार
एक हरा रंग, प्रकृति की रासायनिक प्रक्रिया से गुजर कर
कितने रूप बदल लेता है; पर
बहुरूपी होकर भी स्थिररंगी बना रहता है, और
तेज हवा चलने पर तो जंगल जैसे
रंगों के वात्याचक्र उड़ाता रहता है।

नदियों की रम्यता
स्वरों से परे का अनहद संगीत
अपनी लहरों के भवर में भर भर कर
जब जंगल के अधरों तक ले जाती है तो
आसमान भी तरल होकर
अपनी सतह से नीचे उतर आता है।

जंगल से कोई पगडंडी शुरू नहीं होती और
न कोई रास्ता जंगल में जाकर समाप्त होता है।

केवल हम शुरू होते हैं, और
हम ही चुक जाते हैं।
जंगल तो केवल हमें अपने भीतर झाकने की रोशनी देता है
और,
सुख का एक सूखा टुकड़ा हवा में उछाल देता है कि
शायद हम हाथ उठाकर
उसे झेल सकें।

□

सफ़र

सफर वैकल्पिक हो सकता है
या फिर अनिवार्य भी।
अनिवार्य सफर में हमें
केवल दूरियां तय करनी होती हैं।
सफर वैकल्पिक हो तो उसका शिल्प कुछ अलग ही होता है
जिसमें पेड़ नाचते हैं, हवा गाती है
नदियां गुनगुनाती हुई बहती हैं,
झूमते-से लगते हैं स्थिर पहाड़
और मौसम मोहक दृश्यों में अपने अभिनय को मुखरित करता है।
सफर कुछ ही पलों में
शताब्दियों की अप्रियता हमारे चेहरे पर पोत देता है
और कभी कुछ ही क्षणों में बरसों की निकटता भी ले आता है, पर
अजनबीपन का बोध सफर कभी देता ही नहीं।
सफर कई पड़ावों से गुजरता है
विचार-वसन, चिंतन-पान,
चांदनी की आधी रात में बरगाह का सौन्दर्य,
संकल्प-विकल्प सड़क के बैरियर से
बनते हैं गतिरोध चिंतन-दास्तानों में, पर
मन की ऊबड़ खाबड़ धरती के जाने कितने बीज
यहीं आकर अंकुरित होते हैं।
प्रकृति का दर्पण खंडित होने के बाद भी
हमारे प्रतिबिंब को तोड़ता नहीं।
वह भूलने को भी उद्देश्यपूर्ण मानते हुए
हर व्यक्ति की रचना शक्ति को

अपनी रम्यता मे प्रतिबिंबित करता है
और,
मानसिक स्तर पर हर यात्री के निजी तथा मौलिक संसार को
तारुण्य की तरलता देता है कि मानो मन
चादनी की किरणो के झूले पर
हिन्दोलित होने लगता है।
और यह भी सच है कि
आंधी आने पर रेत को उडना होता है और
पेड़ो को हहराना ही पडता है,
इसीलिए निरद्देश्य होने पर भी
यह दर्पण किसी न किसी प्रतिबिंब को
सदैव प्रदर्शित करता रहता है।
इस तरह के भाव केवल यात्रा ही जगाती है कि
अगर हम ईर्षा के पेड़ उगाना बन्द कर दें तो
हवा आक्रामक नही होगी और
नए हरे पौधे नृत्य की अनेक मुद्राओं में डूबे
हमारे लिए मादक रंग-मिश्रण वाले पुष्प अर्पित करते रहेंगे।
सफर ही हमें इस निश्चय पर पहुंचाता है कि
पहाड पर खडा आदमी
डूबते हुए व्यक्ति की पीडा का अनुमान
कभी नही कर सकता,
और जब हम लौट रहे होते हैं
तो क्या ऐसा नही लगता कि
मार्ग न हो तो पुल व्यर्थ हैं।
और हम इसी तरह की कितनी-कितनी सह-वेदनाएं
बटोर कर एक अशाब्दिक ताज़ापन लिए घर आ जाते हैं
इसका आशय यह कभी नहीं होता कि
सफर पूरा हो गया है।

इन्द्र धनुष

बचपन का सुन्दर मेल
यौवन के प्रेम गीतों की स्वर-लहरी
वृद्ध भावों का विश्राम—इन्द्रधनुष
निश्चय ही बहुत मोहक होता है।
इन्द्रधनुष के सात रंग
इन्द्र के व्यक्तित्व और प्रकृति की झलक देते हैं
इन्द्रियों का देवता है वह
कामोपासना में लिप्त,
इसीलिए इन्द्रधनुष क्षणिक होता है।
इन्द्र सूर्य की किरणों के सातों रंग
हमें प्रस्फुटित कर दिखाता है,
रंगों की लहरों सी वक्र रेखाएं
एक दूसरे के पार्श्व में अपने रंग की झांई छोड़ती हुयी
रंगों को इतना चक्षुप्रिय बना देती हैं कि
हम जीवन में रंगों के प्रति कभी नास्तिक नहीं हो पाते।
इन्द्र तर्क-पसन्द नहीं है
वह तो सम्मोहन-सम्राट है इसलिए
इन्द्रधनुष में प्रत्यंचा न होने की चर्चा
अब तक अजन्मी ही रही,
पर यह तथ्य है कि इन्द्रधनुष में
टंकार की क्षमता नहीं,
उसे तूणीर की आवश्यकता नहीं।
ऐसे अस्त्र और उसकी शक्ति के बल पर पुरंदर ने
पर्वतों के पंख काटकर उन्हें स्थिर कैसे किया होगा? □

वैसाखी

वैसाखी को मेरे देश के लोग
टूटे पाव का विकल्प समझते हैं
नही जानते वे कि
यह विकल्प नहीं, एक विवशता है।
वे, जो लोगो मे अग्रणी हैं,
अपने कुछ साथियो के साथ
टूटे पांव को कस कर वैसाखी पर बांधते रहते हैं
और आंतरिक आह्लाद के स्वर मे
आंखें चमकाकर
अपने इस कौशल का वर्णन करते नहीं थकते।
उन्हें यह तो पता भी नहीं कि
वैसाखी के पेंदे का रबर घिस चुका है और
जाने किस क्षण यह वैसाखी चिकने फर्श पर फिसल जाए
और वैसाखी कसी होने के बावजूद
बुरी तरह गिर पडने से
उनके सिर की हड्डियां चटक जाएं।'
तब तक वे अग्रणी लोग
शायद कोई नया तर्क ईजाद कर लें।

नदी मुड़कर नहीं देखती

अपना मार्ग स्वयं निर्मित करने वाले
चलकर या दौड़कर
सीधे या चक्कर काटकर
निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचते ही हैं;
नदी इस दास्तान का प्रमाण है
वह केवल बहना जानती है
ठहर कर व्याख्या करना नहीं।
अपनी उत्फुल्ल आर्द्रता से वह
पहाड़ों को प्रक्षालित करके आकार देती है
मैदानों को रम्य गुनगुनाहट से मोहक बनाती है
सूखे रेगिस्तानों के अतल में वह
मधुर जल के स्रोत बिछाती है
जन-मगल मे निरत नदी
पश्चात्ताप नही करती कभी!
वह कभी किसी तिलस्म मे नही उलझती
मुखौटे ओढ़कर प्रवंचित भी नही करती
अपने स्वार्थ मे डूबकर दलबंदी नहीं करती
झूठे आश्वासनो के मोहक मंत्रो मे नही उलझती
और क्रोधित होने पर अपनी ही शक्ति के बल पर
विप्लव और ध्वस का ताण्डव मचा देती है,
समस्त पृथ्वी पर छहरा कर
पानी के पठार बिछा देती है,
फिर शिव उसे अपनी जटाओं में चाहें जितना बांधें,
वहे तो उन्मादित नर्तकी की तरह

भंवर पर भवर रचाती,
अपने सतुलित पदाघातो से
प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है।
इन सबका यह अर्थ कदापि नही कि
नदी प्रकृति से उद्दण्ड है,
वह आत्म-केंद्रित, आत्मलीन
अपनी नियति का स्वय निर्माण करने वाली
पृथ्वी की सारी गदगी को अपने अक मे समेट
सहज भाव से बहने वाली,
समर्पण मे आस्था को परिणत करने वाली है।
उस नदी का भी अपना एक अनुशासन है
जिसे प्रकृति स्वीकारती है
अपनी सहवर्ती धाराओं को मात्र सहायक होने का बोध
वह कभी नही देती।
कभी वह सकेत देती है कि
हम केवल दभ भर सकते हैं
आसमान को तोड लाने का।
पर हमारे पाव कभी जमीन से विद्रोह नहीं कर पाते।
पर नदी किसी ऐसे काल्पनिक आदर्श को नही स्वीकारती
वह बाकई छुआछूत को नकारती है
हम सबके विकास पर व्यग्य करते हुए—
उनका समर्पण सर्व सामान्य के लिए सदैव मुक्तभाव मे
मुखरित है।
हम अपने-अपने दड़बों में बद
कितनी शर्तें स्वीकारते हैं
अपने स्वार्थों को रगीन बनाने के लिए।
पर जीवन मे नदी किसी पुल से अनुबन्ध नहीं करती
कि वह पुल के नीचे से गुजरते समय सिकुड़कर क्षीण हो जाएगी;

ग्रौर कभी इस बात की चिंता नहीं करती कि
पुल सुरक्षित है या एक गम्भीर गर्जना के साथ ढह गया है।
नदी जहां जहा से गुजरती है
अपने पीछे कला की समृद्ध वीथियाँ छोड़ जाती है,
अनगढ, नुकीले ग्रौर बेडोल पत्थरो को
समकोण ग्रौर वर्तुल ग्राकार देकर कई बार तो वह उन्हें
पाषाण-शिल्प का सम्मोहक रूप दे देती है ग्रौर
कभी कभी तो इन निर्जीव प्रस्तर खंडों को वह
देवताग्रों मे बदल डालती है।
नदी तो मेरे लिए कल्पना की सडक है जो
कई स्थानो पर मुडती तो है, पर
कभी पीछे मुड़कर नही देखती कि उसने
कितना रास्ता तय कर लिया है।

☐

युद्ध

युद्ध वह शब्द है
जिसने अभी अपना अर्थ नही खोया है,
जिस दिन सूरज ठंडक फेंकने लगेगा
शायद यह शब्द भी अपना अर्थ बदलने लगेगा।
दर्द हस्तांतरित नही होता कभी
इसका युद्ध देता है प्रमाण
परिस्थितियाँ ही उसे उत्पन्न करती हैं
जैसे बरसात ले आती है कीडो को
बस्तियो की ओर।
युद्ध की प्रतिक्रिया का नाम है—आज़ादी
आज़ादी, जो धीरे धीरे घिसकर
रह जाएगी एक शब्द मात्र—
मक्कारी, धूर्तता, जमाखोरी रिश्वत और दैहिक स्वैराचार की
ध्वनि देता हुआ।
हम सभी रोज चाहे-अनचाहे
अनेक स्तरो पर युद्ध करते हैं
क्योकि जो हमको सुख देता है
बदले मे हम उसको कष्ट ही दे सकते हैं,
और कष्ट भी सबके अलग-अलग हैं
अपने-अपने बच्चों के समान।
भले ही वेदना का जल
अधिक कान्तिमान बना दे हमारे चेहरे को पर
उससे मन तो बिखरता ही है, धुएँ-सा।

धूप क्यों नहीं कर सकती
बंद दरवाज़े की व्यथा का अनुमान ?
युद्ध के बीज किस धरती मे नहीं छिपे हैं ।
वाथरूम रिसे नल-से हम
बहते रहते हैं समय-असमय
दूसरों की असुविधाओं को अनदेखा कर ।
कीटनाशक दवा-सी बातें
हम छिडकते रहते हैं
स्वार्थों की फ़सलो पर ।
सरकारी वाहनो से
बेमतलब दिन भर भटकते रहते हैं हम
लिप्साओं की सडक पर ।
अगर हमारे हाथ मे छः उंगलियां हैं
तो निश्चय ही एक व्यर्थ है
कई बार इस तरह के गड्मडड तर्क देते हुए
ढीली अरगनी-से झूल जाते हैं हम
परास्त होने की संभावना मात्र से ।
जंग खाया हेंगर कभी न कभी
हमारे कमीज़ को भी खराब करता ही है,
युकलिप्टस के पेड़-सा हमारा दंभ
पृथ्वी का ढेर-सा पानी खीचकर
उसे ऊसर बनाने मे जुटा रहता है ।
यह अलग बात है कि
विपत्तियो की नदो सब कुछ ध्वस्त करती हुई
बाढ बनकर आए और
उसे जड़ सहित उखाड़ फेंके,
तब हम किसी भी स्वतन्त्र देश के
सरकारी कर्मचारी की तरह व्यवहार करते हुए
काम कम करते हैं और अभिनय अधिक । □

भोंपू-संस्कृति और प्रजातन्त्र

मेरे स्कूटर का हॉर्न खराब हो गया है
खराब इस अर्थ मे कि
इसकी ध्वनि अब बेअसर हो गयी है,
सडक पर चलने वाले लोगों
यहां तक कि पशुओं पर भी
अब इसका कोई असर नहीं होता।
इस भोपू संस्कृति ने कितना बहरा बना दिया है हमे,
हम, जो प्रजातांत्रिक देश के नागरिक है।
प्रजातन्त्र
बडा मोहक शब्द है
यह मोह मेरे लिए और भी बढ़ जाता है
जब सब्जी बेचनेवाली निरक्षर औरतें या
ठेला चलानेवाले मजदूर
पूरी स्वतन्त्रता के साथ तबीयत से
अपने मारे अभाव, गालीनुमा शब्दों मे
प्रधानमंत्री या सरकार के नाम मढ देते हैं।
और सरकार भी,
इन नादानों के लफ्फाजी वक्तव्य पर
कभी ध्यान नहीं देती
क्योंकि उसकी आस्था प्रजातन्त्र मे है।
हमारी जिंदगी दरअसल
रफ कॉपी जैसी है—
सभी कुछ उलटा-सीधा, काट-फांस, हिसाब-किताब
सीधी-तिरछी रेखाएं, कुछ चेहरो के वक्र रेखाचित्र—

कितना-कुछ संजोया है हमने इसके भीतर।
अगर कही थोड़ा साफ सुथरा भी कुछ है तो
अधिक बेतरतीबी और गदगी ने उसे छिपा दिया है।
इसका हश्र यह होता है कि
इसे हम अखबारो के बीच में छिपाकर
कबाड़ी के यहाँ बेच आते हैं।
हमारा दैनिक व्यवहार बडा सकुल है
मुझे आश्चर्य होता है जब लोग
सिगरेट पीते हुए आनन्द के साथ
कैन्सर की बातें करते हैं।
अपने पूर्वजो के विकास-तन्त्र की चर्चा होने पर
हमारी हंसी उन्मुक्त हो जाती है, उपहास की सीमा तक।
फिर भले ही हम स्वयं भी
साबुन के पानी से हवा मे बुलबुले उडाने जैसे
महत्त्वहीन कार्य मे व्यस्त कर लें अपने आपको।
हमारे सिद्धान्त अगर दूसरे नही स्वीकारते
तो निश्चय ही वे
टेढ़े हेण्डिलवाली साइकिल के समान हैं,
जिस पर सवारी करने से पहले
हेण्डिल को सीधा करना ही होगा।
हम सामान्यतया किसी भी परिचित को
सफलता के ऊर्ध्व मार्ग पर चढ़ते हुए
देखना पसंद नही करते।
अवसर देखकर हम इस यात्री की
टांग पकड़ कर खीच लेने से भी नही चूकते,
फिर भले ही उस चढ़ते यात्री की
लंगी खोकर हम अपने हाथों में
केवल उसका जूता ही देखें।

तब भी हम
गौरवान्वित होकर यही हांकते हैं कि
देखें बेटा, नंगे पाव अब कैसे ऊपर चढ़ता है ?
धीरे धीरे इस प्रकार
हमारा स्वाभिमान
दर्प और घमंड मे बदलता जाता है और
इस तरह सड़क के किनारे
झपझपाती किसी ट्यूबलाइट की तरह हम
अपने अधूरे व्यक्तित्व को
बिखेरते रहते है अपनी ही परिधि मे ।

□

दंभ

पानी की लहरों पर
झूलता हुआ
ठहरा है मेरा बिम्ब,
पानी बह जाता है
पर मेरा प्रतिबिम्ब
पानी बदल लेता है, स्थान नहीं छोडता।

□

अकेलापन

पके महुए-सा।
झर गया दिन।
दवात छिटकने से
ढुली हुयी स्याही-सी फैल गई रात,
अब क्या रह गयी बात ?

□

नदी

जब चांद उन्मादक होकर
अपनी किरणो से बिखेरता हो मादकता धरती पर
ऐसे मे
चाँदनी को पलको पर थाम
मैंने देखा है कि
स्तब्ध वातावरण और धुले उजाले मे
हवा ज़हर छोड़ती है और
नदी किसी अलहड़ लड़की के समान
डसने लगती है मुझको। □

बरसात में वागड़

नर्तकी के जिस्म के भूगोल जैसी
वागड़ की धरती
वर्षा ऋतु मे
अधिक ही गंधित हो उठती है।
पठारों के अन्तरीपो पर
तैरते शैवालो से जाने कितने ताल
मुखर हो उठते हैं यहाँ
मीलों लम्बे, कटे, छटे
सड़क को पार्श्व में लिए
बिछे रहते हैं पोखर,
जिनकी थिर सतह पर
तैरते रहते हैं गतिशील वाहन, मानव और पशु-प्रतिबिम्ब।
और कभी सांझ में
फाख्ता-से सफेद देशज पक्षियों का झुण्ड
उड़ता है ऊपर से
तो मुझे लगता है कि
फाख्ता के इस कंपित प्रतिबिम्ब से
सुन्दर
कमल क्या रहे होंगे ?
इधर रात में
दो-नदी के पुल के निकट
जंगली झाड़ों से झरते रहते हैं

जुगनुओं के फूल ।
उधर हरे-भरे खेतों से उठनेवाली
मीलों पानी पर सफ़र तय कर आती हुयी,
पकते चावलों की गंध
पुष्पों की सारी गंध को पीछे छोड़ आती है ।
धीरे धीरे ताल-तलैया
सोखने लगती है धरती
ताकि यहाँ का खेतिहर
देख सके स्वप्न
पोखर मे गेहूँ बोने का ।

□

अनेक बार

विज्ञापन हमे बताता है कि
मानव शक्ति एक अजेय कोष है
सारी ऊर्जाएं उसी मे आकर
सिमटती हैं और वही निर्णायक है कि
इन शक्ति-स्रोतो को वह
जन-मगल मे लगाये या
विध्वस के अनिष्टकारी लीला-विस्तार मे,
पर मुझे समय समय पर
प्रतीपानुभव होता रहता है
कई बार
भीषण गरमी मे भी मुझे प्रचड शीत रोमांचित कर जाता है,
निस्तब्ध वातावरण में भी मैं
ध्वनिया सुनने लगता हूँ,
निर्गन्ध धूप मे अनेक बार
गन्ध की अनुभूति होने लगती है मुझे,
स्याह अधेरे मे
मैं आकृतियाँ देखने लगता हूँ,
कई बार निर्जन में भी
किसी स्पर्श से चौंक चौंक उठता हूँ,
स्व में पर के बोध से
आत्मालाप करने लगता हूँ कभी
मुझे लगता है कि मैं

कालबेलिए की टोकरी में बन्द
विषदन्तहीन सर्प हूँ
जिसे उसके पूंगीनाद पर
नृत्य करना ही पड़ता है,
अथवा—
मैं किसी जादूगर का
जमूरा मात्र हूँ जिसे
काले कपड़े के भीतर सोये रहकर
जादूगर के इंगितों को पहचानते हुए
हर बात का जवाब देना ही होता है।

□

व्यवहार

मेरे घर के पिछवाड़े
छोटे-से उपवन मे
एक रंगीन चिड़िया रोज आती है
चहचहाकर मुझसे बातें करती है।
इस तरह वह धीरे धीरे
आश्वस्त भाव से
मेरी प्रकृति का अध्ययन कर रही होती है कि
इस आंगन मे
घोंसला बनाया जाय या नही ?
उसका यह व्यवहार
मुझे भीतर गहरे तक
अपने विष का बोध करा जाता है।

☐

प्यारी बिटिया

उठ जा मेरी प्यारी बिटिया
स्वरों के मादक संगीत का
अगला पाठ पढ़ाने
तेरी खिड़की पर चिड़िया आयी।
उठ जा मेरी गुड़िया रानी
सर्द सुबह मे
धूप का स्कार्फ लेकर
आ गया है सूरज
तेरे आगन में।
उठ जा मेरी अच्छी बिटिया
तेरे मीठे सपनों की
रगभरी दास्तान सुनने के लिए
तेरे उपवन मे
प्रतीक्षा कर रही है तितली।
उठ जा मेरी राजदुलारी
रविवार की इस अलसाई सुबह में
काले भौंरे-सा हॉकर
डाल गया है रंगीन पराग।

□

आत्मकथांश

समय-समय पर मेरे शरीर में
विचित्र रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं
जो अचानक मेरी प्रकृति को ही बदल डालते हैं।
कभी अकारण मेरे खोलते खून में एक प्रेत जाग उठता है,
भीतर जैसे ऊर्जा का कोई स्रोत खुल जाता है
मांसपेशियां विश्राम से भड़कने लगती हैं
कार्यों को कर डालने की एक अदम्य ललक
चैन नहीं लेने देती,
मैं महीनों का काम दिनों में कर गुजरता हूँ।
गति में ही जीवन की सार्थकता ढूंढ़ने में
व्यस्त हो जाता हूँ मैं,
कोई काम दुष्कर नहीं होता
इस प्रवाह में मेरे लिए।
और कभी अचानक देवत्व जनमता है भीतर
तो आलस्य अप्रिय अतिथियों-सा घेर लेता है मुझे।
भीतर कुछ करने की अदम्य रचनाकुलता होते हुए भी
महीनों तक एक चिट्ठी भी नहीं लिख पाता मैं।
प्रमाद की रंगीन वीथियों में भटकते हुए
कल्पनाओं के तंद्रालोक में तैरता रहता हूँ
विलासी विचारक-सा।
समय किसी जेबकतरे के माफिक
भागता रहता है निरन्तर
और मैं, काया-सुख के प्रमाद में उलझा रह जाता हूँ।
पर पता नहीं क्यों

ऐसा कभी नहीं हुआ कि
राक्षसीपन और देवत्व के ये रंग
एकसाथ मुखर हुए हों मेरे चित्त पर।
अन्यथा मैं भी
समुद्र–मंथन करने से नहीं चूकता,
चाहे उर्वशी, लक्ष्मी या अमृत–कलश
पूर्व–दोहित हो जाने से
मुझे प्राप्त नहीं होते।
सशय यह भी है कि ऐसी स्थिति में
मेरे भीतर के राक्षस और देवता
समुद्रमथन की बात ही न सोचते
और परस्पर मैत्री के हाथ बढ़ाकर
इतिहास ही बदल डालते।

☐

लम्हा लम्हा जिन्दगी

सूखी नदी–सा बुढ़ापा
अख़बार की प्रतीक्षा में विकल रहता है
अन्य किसी के साहचर्य से वह
कुनकुनेपन में नहीं बदलता।
चौपाल में बैठकर चिलम पीने से जो
नये घड़े के पानी की गन्ध–सी आत्मीयता
सहज ही उपलब्ध हो जाती है
वह कीमती शराब के प्याले टकराने और
आदरसूचक संबोधनों से कायम नहीं की जा सकती
शिकारी चाहे अपने स्वरों में
कितना ही अपनत्व भरकर पुचकारे शिकार को, पर
उसके शरीर की गन्ध
पशुओं को पहले ही भड़का देती है
इसीलिए उसका अभिनय भाव
यथार्थ नहीं बन पाता।
सराय में अपनत्व ढूंढनेवाले तो
अनेक हो सकते हैं लेकिन
किसी पहाड़ी मन्दिर की भीतरी गन्ध–सा
अपनत्व बिखेरने वाला
कोई नहीं मिलता।
उदासी के गहरे अर्थ खोलते हवा के हिरण
हमें निजत्व के क्षणिक परिवेश में ढकेल जाते हैं
तब अपने चारित्रिक पाखण्ड को
स्पृहा के पून मन्त्रों से धोते हुए हम

सदर्भ बदलने का बहाना ढूढने में व्यस्त हो जाते हैं।
हमारा भी क्या व्यक्तित्व है
कि बाल छोटे करवा लेने मात्र से
चेहरा अपरिचित लगने लगता है।
उड़ान भरने की आतरिक आकाक्षा के कारण
पक्षियो को आधे पेट रह कर भी
अपने शरीर से भी बडे डैनो का वजन
ढोना पडता है।
यहाँ तो स्वस्थ व्यक्ति भी
शक्तिवर्धक औषधियो के सेवन करने की लालसा
नही छोड़ना चाहता।
मन की बंजर भूमि पर
यदि मानवीयता की फसल बोयी जाय
तो भूख ऐसी चीज नही है
जो नेस्तनाबूद न की जा सके।
दर्द बेशक एक पेड है
जिसके फल किसी दूकान पर नही बिकते।
धूप की उजली पिंडलियाँ
जब दौडने लगती हैं
तो किसी भी पेड़ के साये में सुस्ताने नहीं रुकती।
महानगर में
आदमियों के जंगल कृत्रिम फूलो से सजे रहते हैं
यहां बसन्त का आगमन निषिद्ध है।
नाखून में जमे मैल-सी
अपनी बुराइयो को आनन्द से हम
मित्रो में बैठकर
अपने ही दातो से कुतरते रहते हैं और
दूसरो की विशिष्टताओ को पांवदान समझ

उस पर हम सारी रेत भड़का आते हैं।
इस तरह हम अपना श्रेष्ठतम
ईर्षा के यज्ञ में सहर्ष समर्पित करते रहते हैं।
मैं देख रहा हूँ कि
औघड़ तान्त्रिक–से पहाड़ ने
अंजलि में ले लिया है चद्रमा को
तर्पण के लिए और
मैं अपनी प्रार्थना का एक छन्द
पढ़ने लगता हूँ अपनी अनास्था के नाम।
इस तरह टुकड़ा-टुकड़ा अहसास भोगते हुए
लम्हा लम्हा ज़िन्दगी जी रहा हूँ मैं।

□

शीत लहर

सर्द मौसम मे
मकानो के छज्जो पर
उदासियों के परिन्दे बैठे हैं।
सूरज ठंडे पानी से
नहाकर निकला है
सन्नाटे उसके दांतों जैसे बजते हैं।
धूप के घोड़ों की मरियल पीठ पर
हवा के चाबुक चलते हैं।
बेरंगी शीतलहर के दिन
गम्भीर रोगियों–से
बन्द कमरों में
अंगीठिया जलाकर सोये हैं।

□

मंगू काका

कुलीन घराने का मंगू काका
नीम की छाया में
नंगी खाट पर बैठा है।
दो पीढ़ियां उसकी आंखों के सामने हैं,
एक पीढ़ी की महिलाएं
मंगू काका के सामने से गुजरते समय
अपने पांवों की जूतियां
अपने हाथों में लेकर निकलती हैं कि
कहीं उनके पांवों की आहट से
काका की तल्लीनता भंग न हो जाए।
दूसरी पीढ़ी
इन्हीं महिलाओं के बच्चे—
मंगू काका की खाट के पास
गालियां बकते
अंटियां खेलने में व्यस्त हैं
काका उनकी नजर में एक बेकार बूढ़ा है।
और मंगू विचारों की तन्द्रा में डूबा
अपनी पगड़ी खोलता है,
उसे घूरता है, निहारता है,
और—
धीरे धीरे उसे वापस बांधता हुआ वह
एक बीड़ी सुलगाकर खो जाता है
भुगते हुए अतीत में।

वसन्त की प्रतीक्षा

पृथ्वी हर स्थिति में स्थिर बनी रहती है पर
जब उसका भीतर उद्वेलित हो उठता है तो
कमजोर सतह को फोड़कर वह
गैस और लावे के रूप मे अग्नि-वर्षा करता हुआ
अपनी कुंठाएँ
भयंकर ऊर्जा के साथ मीलों ऊपर फेंकता है
और अब तक के स्थिर जीवन मे
भयमिश्रित प्रकंपन व्याप्त कर देता है।
दर्प मे डूबकर ही वृक्ष
धीरे धीरे चलने वाली सुखद हवा को
प्रचड तूफान में बदल डालते हैं
फिर चाहे इस तूफान से
वे खुद ही समूल क्यो न उखड जाएं?
विप्लव के बाद की शांति और
वातावरण का सन्नाटा
इसी दर्प का पश्चात्ताप होता है।
हमारे अभिनय का भी कोई जवाब नही
हम जब इच्छा हो तब
आत्म-करुणा उत्पन्न कर लेते हैं और
चाहें तब अपने यथार्थ स्वरूप को विस्मृत कर
आत्मप्रशंसा के दिवा-स्वप्नों मे उलझ जाते हैं।
परनिन्दा
हमारे व्यक्तित्व का पैना शस्त्र है
जिसे रोज काम मे लेकर हमने उसे

बेहद भोंथरा बना दिया है
और अब तो उस पर
आत्म-प्रशंसा का जंग भी चढने लगा है।
हम बड़े शालीन और निर्मम हैं कि
दूसरों से भी
उनका व्यक्तित्व छीन लेते हैं,
हमारी मनःस्थिति के अनुरूप ही हम
दूसरो के साथ आचरण करते हैं और
अनेक जटिल प्रक्रियाओ से गुज़र कर भी हम
अपना निजत्व नही खोते।
समय की व्यस्त दौड़ मे
हर आदमी के भीतर
ताज़महल बनते हैं, यह तो मैं नही कह सकता,
पर, थार से भी विस्तृत मरुस्थल का निर्माण
हर हृदय मे होता है
इतना मैं जानता हूँ।
आदमी की कुंठाएँ
उस पेड़ के समान हैं जो
लम्बे समय तक बर्फ से ढँके रहने पर भी
नही मरती।
उड़ते हुए पक्षियों के रंगीन पर
हम सबको विमुग्ध तो करते हैं लेकिन
चिलचिलाती धूप मे झुलसते
सुकुमार पंखो का दर्द
शायद सूरज भी महसूस नही कर पाता।
मेरी प्रज्ञा के द्वार खटखटाने वाली अनुभूतियाँ
अपंग बच्चो के समान होने पर भी
जीवन के वसन्त की प्रतीक्षा मे विकल रहती हैं
जाने क्यों ?

□

पीतवर्णी हम

कथा, काव्यो की बात अलग है
जहाँ हम नायकत्व पसन्द करते हैं, पर
जीवन की लम्बी कथा मे हम अधिकतर
खलनायक की भूमिका ही निभाते हैं।
हरे भरे पेड़ हमे अच्छे लगते हैं और
हमारा व्यवहार यह होता है कि हम
जडविहीन अमरबेल बनकर
आश्रय देनेवाले दरख्त की
हरियाली ही निगल जाते हैं,
अफसोस यह है कि
उसकी सारी हरियाली निगल कर भी पीतवर्णी बने रहते हैं।
न कभी अकुरित होते हैं
और न ही प्रस्फुटित
सूखकर भी उसी पेड़ पर
जाले–से लिपटे रहते हैं, लेकिन
वह वृक्ष वापस हरा कभी नहीं हो पाता।

□

वर्षा

बाथरूम से नहा-धोकर निकले सुथरे बच्चो-से
पौधो के उजले मुँह देखकर ही
पता चल पाता है कि वर्षा
इनके कानो मे प्रेम की किसी मधुर बात का वर्षण कर
दबे पाव निकल गयी है।
पेडो पर गिरती सम-ध्वनि बूंदें
हर ताल पर वृत्त बनाती
कमनीय चरणो की त्वरित गति से
वृत्त, अर्द्धवृत्त, वक्रवृत्त, अनेक कल्पित बिम्ब रचाती
मन्थर भाव से नृत्य को विराम देती है,
इसी नर्तकी का नाम वर्षा है।
कभी वर्षा के इस मौसम मे
शेम्पू से धोये गये नवयौवना के बालो-से बादल
हवा मे लहराते हैं तो लगता है
आसमान मे कोयलें उड़ने लगी हैं।
फिर धुंध इतनी मनोरम कि जैसे
प्रकृति की अल्हड़ सुन्दरी का सफेद दुपट्टा
जिस्म से फिसल कर उडा जा रहा है।
हतचेतन वह मुग्धा उसके पीछे दौड़ रही है
चेहरे पर उसके जैसे रक्त का भंवर ठहर गया है,
सकोच में असंतुलित गति के कारण
हल्के से किसी आघात से ही
गैरवर्णी एड़ियो से रक्त की कुछ अज्ञात बूंदें
शनयभाव से टपक पड़ती हैं हरीतिमा पर।

तब ऐसा लगता है
कितनी सुन्दर बीरबहूटियां
हरे-भरे आंगन मे खेलने लगी हैं।
प्रकृति अनियोजित नहीं चलती कभी
अगर हम शोधक बनकर खोजें तो
उसके पीछे एक आश्चर्यजनक योजना हम ढूंढ सकेंगे।
हमारे जीवन में भी ऋतुओं का एक क्रम है
सभी वस्तुएँ कम-से-कम एक बार
गुजरती हैं हमारे जिस्म से,
पर पुनरावृत्ति के बिना
ऐसे तथ्यों को स्वीकार करने के अभ्यासी हम नहीं हैं।
पर ऐसे क्षण आते जरूर हैं
जब हम भी किसी प्रवेगी पहाड़ी स्रोत-से
घरघराते हुए गहरे
किसी कन्दरा मे गिरकर वेग से बहने लगते हैं,
चट्टानो से टकराकर भी
क्षत नही होते; लौटते नहीं
और रेगिस्तान को भी जल-प्लावन का संकेत देते हुए
आगे बढ जाते हैं।
क्या इसी का नाम वर्षा नहीं ?

□

मृत्युदण्ड

दण्ड की भावना होती है
अपराधी को एक पीड़ा-बोध के बाद
सुधार का अवसर देना।
क्या मृत्युदण्ड
अपराध को मूल से नष्ट करने का
मानवीय तरीका है ?
न्यायाधीश तो अपराधी को मृत्युदण्ड देकर
अपनी कलम तोड़ डालता है
यहाँ कलम मात्र प्रतीक है भीतरी व्यथा का,
यह एक वक्तव्य है कि
दण्ड देकर मैं आत्मग्लानि महसूस करता हूँ।
मृत्युदण्ड सुनाये गये अपराधी की मानसिकता
कितनी विचित्र होती है
जीवन का सारा अतीत
जैसे रात के अंधेरे से
एक उजले कुहासे में बदलता हुआ
आँखों की झील में तैरता रहता है और
डूबता चला जाता है,
इधर मन
व्यथा की लहरों पर थपेड़े खाता
बुलबुलों-सा बिखरता जाता है।
विद्रोह, निराशा,....जाने कितने भाव
जन्म लेते ही मरने की तैयारी में जुट जाते हैं।

रक्त इतना शिथिल हो जाता है कि जैसे
शरीर लकवे की गिरफ्त में आने ही वाला हो।
बहुत कम क्षण आते हैं जब
चेहरे का रंग काला पड़ता हो,
ऐसे क्षण में लगता है कि
मध्याह्न में ही सूर्यास्त हो गया है।
जब जब मृत्युदण्ड की घोषणा होती है
मुझे लगता है
शेष रही मानवी करुणा के स्रोत भी
सूखते चले जा रहे हैं।
मेरे मुखर शब्द जड़ होने लगते हैं
इस बोध के साथ कि
क्या करोगे,
जब तुम्हारा मौन
बुनने लगेगा जाल ?
क्या निगल पाओगे तुम
मकड़ी बनकर
अपनी ही बुनावट को।

□

आवास

हम समन्दर से विपरीत आचरण वाले हैं
उसकी सतह पर चचलता है और
उसका भीतर तरल होकर भी स्थिर है।
हम बाहर से स्थिर हैं और
हमारा भीतर नित्य ही उद्वेलित रहता है
अश्वत्थ वृक्ष के समान।
सरल और सपाट दीवार को वह
अपने तन्तुजाल से
मुक्त रखती है,
मकड़ी भी सरलता का आदर करती है।
वह अपना आश्रय दीवारों के कोनों को ही बनाती है,
वह भी जानती है कि
कोना-विहीन कोई मकान होगा भी कैसे?
आप कितने स्वैराचारी हैं,
इसका पता तो आपका आवास देता है।
अगर मकान किराये का है तो
आपके व्यवहार की अल्हड़ता
एक फक्कड़ी बेतरतीबपन
बेढंगी लगी हुयी कीलें,
दरवाजों, दीवारों पर बच्चों द्वारा बनाये गये
पैंसिली चित्र
उखड़ा हुआ आंगन
टूटे हुए, टायर लटकते मुड्ढे

पैंताना टूटी हुयी खाट
भरती हुयी पानी की टंकी
इस बात का प्रमाण देती है कि
आप अपने किराये को किस सजगता से
वसूल कर आत्मतोष में डूबे रहते हैं।
अगर आवास आपका अपना है तो
तेज हवा का चलना भी आपको अप्रिय लगता है कि
रेत को कब तक साफ करते रहें?
रसोई घर से उठने वाला
भारी स्निग्ध और गंधित धुआं भी
हमें बुरा लगता है कि
यह सफेदी को बहुत जल्द निगल जाएगा।
कीमती पर्दे लटकाकर
प्रकृति को फ्रेमों में बन्द कर
बोतलों में उद्यान सजाकर
हम साधारण मकान को भी
विशिष्ट बना देने का प्रयत्न करते रहते हैं।
हमारे जीवन से लोकगीतों-सी मधुरता
वन्य जीवों की तरह ही
धीरे धीरे कम होने लगी है और
आर्थिक आंकड़ों के समीकरण ने
यन्त्र और मानव में कोई अन्तर
नहीं रहने दिया है।

□

चमगादड़

एक पक्षी ऐसा भी होता है
जो नित्य ही इस भय से त्रस्त रहता है कि
आसमान मेरे ऊपर न गिर पड़े,
और गिर भी जाये तो उसे रोकने के लिए वह
टांगे ऊपर करके सोता है।
उसे अपनी अदना टांगों पर
इतना विश्वास है कि
वह इन पर आसमान को ठहरा लेगा।
शायद उसकी इसी आस्था के कारण
आसमान कभी प्रकंपित भी नहीं होता।

विचारधाराएं और हम

तितलियो के पीछे दौड़ने की आयु
जिस सीमारेखा पर लुप्त होती है,
आत्म-मोह मे डूबकर
किताबो मे फूल छिपाने की उम्र
अनजाने ही यही से प्रारम्भ होती है।
अंतःस्रावी ग्रन्थियां इन्ही दिनो
हमे बेचैन रखती है, और
मोह, सवेग, संभ्रम मनोजगत के काल्पनिक संसार मे
रग भरते भरते ही
जीवन की प्रगल्भ तरलता
विरल होने लगती है।
तभी व्यक्ति पहली बार
विवेक के आंगन में खड़ा होकर
चयन करता है अपनी मनोरचना के अनुकूल चिंतनधारा का।
फिर उसके सर्वांगी अध्ययन के पश्चात्
उस पर चिंतनधारा का ऐसा जनून सवार होता है कि जैसे
वही इस धारा का जनक हो।
यहाँ तक कि विपक्षी के सम्मुख वह
बिना हथियार के ही आक्रामक हो उठता है,
भले ही उसका आक्रमण
मरी धार के चाकू-सा हो।
जिन्दगी की रफ्तार जब उसके
सिद्धान्तो को पीछे छोड़ आगे बढ़ने लगती है
तो लगता है कि

पर्वत से लटकती हुयी प्रदीर्घ चट्टान
यकायक ढह गई हो और अनेक खडों में बिखर गयी हो।
तब आत्म-प्रवंचना की विद्या का आश्रय लेते हुए वह
परिवेशजन्य विकृतियों का शिकार होता हुआ
किसी अन्य विचारधारा का हिमायती बन बैठता है।
तब उसका आचरण
उस उद्दण्ड लड़के के समान होता है जो
अपने से अधिक मेधावी छात्र को
अवसर देखकर धक्का देने से नहीं चूकता।
और आश्चर्य की स्थिति तब उत्पन्न होती है
जब व्यक्ति विचार को
भ्रूण के स्तर से पालता है और
व्यवहार के स्तर पर आने से पहले ही उसका
गर्भपात हो जाता है।
इस तरह, हम अपने व्यक्तित्व को कुंठित करते हुए
विघटित करते रहते हैं और
जो है, उसके विपरीत
चेष्टाएँ और क्रियाएँ करते हुए
शब्द-प्रवाह के सवेग में
अपने व्यक्तित्व के उन्नयन की झलक देते हैं।
जबकि इस तरह हम अपने मौलिक चिंतन को रुद्ध कर,
बनी बनायी लकीरों पर ही यात्रा करते रहते हैं।
हम जानते हैं कि हमारी स्नायु-विकृति ने
हमें सदैव वाचाल बनाये रखा है,
यही कारण है कि हम सदैव
अपने अनुभवों से असंतुष्ट रहते हैं,
भले ही अपने सिद्धान्तों को हम
समय समय पर मैले तौलिये-सा लपेट लेते हैं।

पर अन्ततः मोहभंग का क्षण आता जरूर है
तब हमें अपने मनोदौर्बल्य का ज्ञान होता है कि
इन चिंतनधाराओं के घूर्णन मे हमारी स्थिति
झंझावात मे रेत के कण के समान है।
इसीलिए मोहभंग के बाद व्यक्ति
पलायनमार्गी बन बैठता है या अध्यात्मपंथी।
तब भी सूर्य यही संकेत देता है कि
उसने कभी अपनी परिधि छोड़कर यात्रा नहीं की
वृक्षों ने अपने फलों का स्वाद कभी नहीं बदला
चन्द्रमा ने कभी तेज से प्रदीप्त होने की कामना नहीं की
आसमान ने कभी अपना रंग नही बदला और
पृथ्वी ने कभी अपनी विनय नहीं छोड़ी।
फिर यह कितनी हैरतअंगेज बात है कि
दूसरों पर अधिकार न चलने की दशा मे
हम स्वयं पर आक्रमण कर आहत होते हैं और
विजयी महसूस करने का स्वांग रचने लगते हैं।
इस तरह हमारा जीवन
केवल कुछ चिंतनधाराएं ढोते-ढोते ही
तमाम हो जाता है,
भले ही हम यह कहते हुए प्रसन्नता व्यक्त करें कि
मन्दिरों मे कलाकार की नहीं
सम्राट की कामुकता झांकती है।

□

तालाब

दिन भर के थके हारे
मजदूर बच्चों से पहाड़,
आकर सो गये हैं
तालाब की गोद में
कि जैसे तालाब ही इनकी माँ है,
और वह
लहरों की थपकियाँ दे-दे
बहुत जल्द उनींदा बना देती है इनको।
जैसे जैसे रात गहराती है
पूरा चाँद
किसी शापित दमयन्ती के मुखविहीन मृत हंस-सा
आकर गिर पड़ता है
तालाब की लहरों पर।
जिसे सुबह होने से पहले
प्रदीर्घ मछलियाँ निगल जाती हैं।
दिन उगने पर क्षुब्ध मन तालाब
अपनी आश्रित मछलियों के इस विपाक्त व्यवहार पर मनन करता हुआ,
धीरे धीरे सूखते चले जाने का निश्चय
दोहराता रहता है
मन ही मन।

सहस्रधारा

जब व्यक्ति युवा स्वप्नदर्शी से
एक पुरुष मे तब्दील होता है तो
पौरुष की धूप में
जीवन के सप्तरंगी क्षण रंगहीन होने लगते है।
जब वह प्रेयसी से पत्नी तक की यात्रा कर लेता है तो
उसका उद्दाम यौवन आवेग मे
स्नेहहीन हो जाता है, जैसे
आग के हृदय मे ममता होती ही नही।
ऐसे में हमारे विवेक को भी पक्षाघात हो जाता है
जैसे वेरंग चिट्ठी के लिए
हमारा लेटर बॉक्स व्यर्थ है।
तर्कों के मचान बना लेने से
जिन्दगी सुरक्षित नही हो सकती।
जीवन समझौतों के बल पर नही
आंतरिक समझ की बारीकियो से प्रवाहित होता है।
हमें उन स्रोतो के प्रति
उदार और विवेकशील होना ही चाहिए
जहाँ से हम मानसिक ऊर्जा प्राप्त करते हैं
लेकिन हमारे साथ इससे विपरीत घटित होता है।
प्रचण्ड गरमी से आहत होकर
ठण्डे स्थानों की खोज में जैसे
चीटियों का दल
अपने अंडो सहित निकल पडता है,
वैसे ही हम भी दूसरों के व्यक्तित्व की स्पर्धा में
अपने तर्कों को माजकर
परिष्कृत रुचियों का बोध देते हुए
निर्विकल्प गुम्बदों में बंद हो जाते हैं।

या फिर।
अकृत्रिम पर मायावी आचरण करते हुए हम
हस्तरेखाविद् की तरह
खगोल से लेकर ऐश्वर्य के शिखरों तक की
यात्रा करवाते हुए
प्रतिपक्षी को मूर्ख ही मानते रहते हैं।
इस तरह परस्पर चलने वाले
युद्ध को
हम समाप्त नहीं करना चाहते
जबकि दोनों पक्ष जानते हैं कि
युद्ध व्यक्तियों को
आंकड़ों में बदल देता है।
सूखे पेड़ से कालांतर में फल की आशा
हममें से कोई नहीं रखता।
स्वयं को बुद्धि का बृहस्पति मानते हुए हम
एक अजीब अनास्था में उलझ जाते हैं, जबकि
आस्था के अनेक रंग हो सकते हैं, पर
अनास्था सदैव रंगहीन होती है।
जीवन भर हमने जो अर्जित किया
उन अनुभवों का संवेग
किसी भी शक्तिशाली नदी के वेग से
कम नहीं होता।
पर सफलता के अपने चरम पर आने के पहले ही
हमारे व्यक्तित्व की यह नदी—
अहम्, स्पर्धा, ईर्षा, द्वेष, निन्दा की
नुकीली चट्टानों से बिधकर
सहस्रधारा में बदलती हुयी
अपनी ऊर्जा और प्रवेग को खो बैठती है, और
केवल दर्शनीय बनकर रह जाती है।

□

वर्षा : पांच कविताएं

1. मांगें सब बड़ी बड़ी
   वायदे हैं बौने,
   बाढ़ के विरोध में आज
   धूप की हड़ताल है।
2. पिण्डारी मौसम ने
   घात लगा
   मार डाला सूरज को।
   सूरज के मरने पर
   बादल तो रोयेंगे।
3. बली के पल्लू में
   सूरज की अठन्नी बांध
   गर्मी को खरीदने
   चली है
   हवा आज।
4. चल पडा है
   बूंदों की हवाई चप्पलें पहने
   वर्षा का जुलूस
   सूरज की विधान-सभा पर
   धरना देने।
5. मौसम के देश में
   सत्ता का फेर–बदल
   होता ही रहता है,
   वर्षा का शासन है
   सूरज पर करफ्यू है।

काफ़िला

ज़िन्दगी दरअसल विचारों–अनुभवों का
एक काफिला है,
जिसका सफर कई बार
गतिहीन होते हुए भी
अनेक पडावों से गुजरता है।
जैसे वर्षा ऋतु मे बादल
हो जाते हैं आवारा लडकों–से
वैसे ही यौवन के पड़ाव पर
भावात्मक अभिवृत्तियां
सुख–सिद्धान्त का पालन करती हुयीं
अपनी ही गूंज मे तन्मय
जाने कितने घौंसले बनाती बिखेरती रहती हैं।
बीते हुए अनुभवों को
धरोहर न मानते हुए
प्रौढ़ हुए हम
विसर्जित तटस्थता को
कीलें ढीली हुये तम्बू–सा
अस्थिर बना देते हैं।
हवा का रुख
मौसम नहीं बदल सकता, हाँ
मौसम हवा के रुख को
किसी कुशल जादूगर के समान
किसी भी क्षण बदल सकता है।

मन्दिर के गुम्बद और गर्भगृह में
मानव–यात्रा का प्रच्छन्न इतिहास छिपा है, कि
यात्रा सदैव गुम्बद से ही
शुरू होती है।
अपनी वृद्धता को निकट देखकर
अतीत के सारे मूल्यों को जीर्ण मानते हुए
निवृत्ति का भावी मार्ग हम
फिर से मोह मे ढूंढने लगते हैं।
भोगने मे असमर्थ होते हुए भी
भोग मे घोर आसक्ति का विषाद
जीते रहते हैं।
काफ़िले के इस अन्तिम पड़ाव पर
अप्रत्याशित रूप से
हम महसूसने लगते है कि
लिप्सा की धूप कभी नही ढलती और
अनुभवो से अर्जित सारे सत्य
आसक्ति मे आबद्ध होकर रीतने लगते हैं।
काफिला अपना सफ़र
कब पूरा कर लेता है
हमें पता भी नही चलता।

□

रोबोट लिखता है कविता

महानगरों की व्यस्त ज़िन्दगी मे
आदमी की पहचान खो गयी है
अब वहाँ केवल आँकड़े और पदों की ही
गणना की जा सकती है।
दिन में भी धुँए की चादर ओढ़
सोये रहते हैं महानगर और
स्वप्न की गति में
दौड़ता रहता है आदमी,
कितनी विचित्र बात है कि
आदमी का विकास ही
आदमी को निगल जाए।
सम्मोहित करने और
सम्मोहित होने मे बड़ा फर्क है,
मशीनी दैत्य हमें सम्मोहित करता है और
प्रकृति मे हम स्वय सम्मोहित होते हैं।
आजीविका की व्यस्त भागदौड़ मे
व्यक्ति को आत्मचिंतन के लिए
फुरसत मिलती ही नहीं।
सारे मूल्य भौतिक, सारा ज्ञान भौतिक
जीवन ही जैसे भौतिकता का पर्याय हो।
यहाँ तक कि निर्धारित समय निकल जाने पर
आदमी रोटी न खा पाने के लिए विवश है।
जाने कितने शब्द, रंग, आकार

अनचाहे देखने होते हैं आँखों को,
जाने कितने हॉर्न, भोंपू, ध्वनियाँ
पीनी पड़ती हैं कानों को,
विज्ञापन और विज्ञान के इस युग में
पुष्प अनेक रगों में
अवतीर्ण हो रहे हैं,
निश्चय ही रंग बड़े मोहक हैं, पर
गन्ध ने पुष्पो से तलाक ले लिया है।
बीसवी शताब्दी मे
शब्द भी
मुरमुरे, खाली ढूह–से
पीली पड़ी घास–से
पक्चर हुयी बस–से
टूटी हुयी पुलिया–से
निरर्थक हो गये हैं।
इनकी आत्मा जैसे विद्रोह कर गयी है।
कोई आश्चर्य नही यदि
आगामी दशक मे
रोबोट कविता लिखने लगे,
और आदमी
रोबोट की संवेदनशीलता पर
अनुसंधान करे।

☐

मिड-वे-होटल

मध्यरात्रि का सन्नाटा
जैसे कोई कहानी सुनने मे तल्लीन है ।
किसी प्रेत के समान विकट ध्वनियों को
विराम देती बस आकर ठहरती है
मिड-वे होटल पर ।
हल्की रोशनी मे डूबता उतराता होटल
किन्नर-लोक की कल्पना को साकार करता है ।
भव्य फरनीचर, कीमती क्रोकरी
अनेक कलात्मक वस्तुओ का पृथक काउन्टर और
तन्द्रालोक में खोए
उष्ण आसव पीते हम दो मित्र ।
परस्पर चेहरो पर स्तब्धता, जड़ता और
विराट-हीनता का बोध लिए बैठे हैं ।
मार्ग का मध्याह्न, मध्यरात्रि और
विश्रामस्थल पर शैथिल्य के क्षण ।
यकायक बस का हॉर्न
जैसे जंगल दहाड़ उठा हो ।
नि:श्वास छोड़ते हम लोग उठ खड़े होते हैं
कि जैसे
किसी विधवा सुन्दरी से मन ही मन प्रेम करने लगे हो ।
लगता है कि होटल
एक संस्कृति बन गया है,

जंगल भी जिससे मुक्त नही है।
यह संस्कृति हमारी सत्कार-भावना को
निगल रही है, फिर भी
पनप रही है, विस्तार पा रही है,
सम्भवतः इसलिए कि होटल
हर वर्ग, धर्म-सम्प्रदाय, वाद और टेबू को
बिना किसी संशय और संकोच के
स्थान देता है और
स्वतन्त्रता भी।

□

सार्थकता नदी की

गिर कर पहाड़ से
अनलिपिक नुकीला बेडोल पत्थर
जिसमें असीम साघातिक क्षमताएँ हैं,
नदी के प्रश्रय में आकर
स्रोतस्विनी के घूर्णन से
अपनी आक्रामकता तिरोहित कर बैठता है और वह
वर्तुल बन जाता है।
जबकि यह तो होता ही है कि
उसके नुकीले कोने
नदी के जल में एक तीखी चुभन का अहसास छोड़ते हैं,
ठीक उसी तरह, जिस तरह
चारा लगा काँटा
मछली के मुँह में
छोड़ जाता है,
चुभन का एक घाव।
नदी ही है, जो इस चुभन को
बिना किसी शिकायत के
अपनी लहरों से आच्छादित कर लेती है
और पत्थर को भी विवश कर देती है कि
वह अपने उपालम्भ को न कर सके अभिव्यक्त
कि उसके नुकीलेपन को सदैव के लिए वन्ध्या कर दिया गया है।
जब तक पहाड़ रहेंगे
पत्थर झरेंगे ही
और नदियाँ भी नहीं नकार सकतीं
अपने मन स्तल में छिपे शिल्पकार को।
स्रोतस्विनी का नकारना इसलिए भी संभव नहीं है कि
फिर उसके तन में बालू का निर्माण कैसे होगा?
और बिना बालू नदी की सार्थकता रहेगी कैसे?

□

अकाल-दंभ

अकाल इंद्र बन बैठा है
अपने दंभ से
और मधुमास बेचारा बौना होने लगा है,
उफन कर बहनेवाली नदियाँ
अब तरल वक्र रेखा बन कर रह गयी हैं।
नगजी के नथुने
तंबाकू मे ही उलझे हैं,
खेतों की सौंधी खुशबू के बिना।
मक्का–चावल के खेत
उसकी आंखों मे हरिया रहे हैं
थूहर घास–सी सूख गयी हैं, और
महुओ पर कौवे बैठे हैं।
खेत के रक्षक कुत्ते
हाँफते, जीभ चलाते, कंकाल हुए
कच्ची मिट्टी की झोंपड़ियों के दरवाजों पर
मूर्छित से लेटे हैं।
चारे के अभाव मे भटकते मवेशी तक
नगजी को अब अपने नही लगते
क्योंकि अपने बच्चों की भोली आंखों में
यमदूत बनकर मंडराती भूख को
उसने बहुत करीब देखा है।

तालाबों के तलछट
दर्पण–से तड़क गए हैं।
नगजी के भीतर-बाहर
स्वयं से संभाषण करता
विकट सन्नाटा है।
ऐसे में यह आजाद सूरज
महज अंधेरा पीकर
कब तक गा सकेगा
रोशनी के गीत ?
इसीलिए कविता–नदियाँ
रीत गयी हैं,
भाव-बांध भी सूख गए हैं।

□

एक जंगल भीतर भी

"जगल बचाओ
जगल उगाओ
वन-गीत गाओ
वन-सप्ताह मनाओ"
जैसे आकर्षक नारो मे मन उलझता जरूर है
पर क्या इन विज्ञापनों से जगल की रक्षा की जा सकती है ?
हम कहाँ हैं इतने सजग
वन-रक्षा के लिए ?
हमने तो
अपने भीतर उगे जगल मे से अनेक वृक्षों को
क्षति पहुंचायी है ।
अहिंसा के पेड को तो हमने
बिल्कुल जड के करीब से काट डाला है
कि कही वह वापस न फूट पड़े ।
सत्य के पेड की उपयोगी छाल को हमने
जगह जगह से उखाड़ लिया है
और उसे बदरंग कर डाला है ।
मानवीयता के पेड की
अस्तित्वमूलक सभी शाखाओ को छाग कर
उसे पत्रहीन बना डाला है
और कहने को अब हम
उसे 'वसंत प्रिय' वृक्ष कहते हैं ।
मैत्री के पेड मे
स्वार्थ की टहनियां डालकर

हमने नए वानस्पतिक प्रयोग किए हैं और
मैत्री-पुष्पों का रंग ही बदल डाला है।
भले ही इन रंगों के लिए हमें इन पुष्पों की गंध को
अकाल-मृत्यु की ओर धकेलना पड़ा हो।
सम्बन्धों के वृक्षों को हमने
इतनी अधिक कृत्रिम खाद दे डाली है कि
पानी के अभाव में ये वृक्ष
समूल सूख गए हैं,
यह अलग बात है कि
मरकर भी इनका रंग हरा ही दिखता है।
भीतरी जंगल में
जो एक चुंबकीय आकर्षण था
उसका अयस्कातपन रेशा-रेशा होकर बिखरने लगा है
सम्भवत. यही कारण है कि
अब यह जंगल नहीं आकर्षित करता
मेघ-खंडों को।
कहने को हम अब भी हर वर्ष
वन-उत्सव मनाते हैं पर
शनैः शनैः अनुर्वर होते जा रहे हैं।

बेग्रसर ग्रासमान

दर्शन इसे शून्य मानता है
शून्य, जो ग्रपने ग्राप मे विकट रहस्य है।
फिर यह कितना विचित्र तथ्य है कि
कुछ न होकर भी ग्रासमान
कभी रंग न उड़ने वाले तम्बू-सा
सदैव छाया रहता है हम पर।
ग्रौर यह ग्रासमान
हर क्षण प्रभावित करता है हमको
जब जब मौसम इस पर ग्राक्रमण करता है, या
बादल ढक लेते हैं इसके वर्ण को, तो
हम क्यो ग्राहत होते हैं ?
उसमे जब जब बिजली कौंधती है
क्यो भय हमारे मन मे
एक कृशता का भाव जगा जाता है ?
बंद घुटन भरे वातावरण से विद्रोह कर
क्यो ग्रासमान देखने की एक ग्रजानी ललक
मन मे जन्म लेती है ?
इसके नीले रग के प्रति
वशानुगत ग्रनुरक्ति क्यो ग्रंधभाव से हमे जकड़े रहती है
ऐसा क्यों होता है
मुझे नही पता ?
पर फिर भी मेरे रक्त का प्रवाह
ग्रासमान की प्रसन्नता ग्रौर रोष के साथ
घटता बढ़ता रहता है।

उसका निर्विकल्प भाव
मुझे यह बोध देता है कि
भय नहीं है कुछ
खुद से डर कर आखिर जाओगे कहां ?
कई बार उसके संकेत बड़े गूढ़ होते हैं कि
क्यों नहीं हम भी अपने भीतर
एक आसमान निर्मित कर लें जो
जीवन से दमन की प्रक्रिया ही सोख ले
ब्लोटिंग पेपर की तरह ।
कभी कभी हर आदमी शायद
इस बात की भी ज़रूरत महसूस करता है कि
उसके अंतर में फैला प्रदीर्घ रेगिस्तान
अपना मटमैलापन छोड़कर
उजले धुले नीले आसमान में बदल जाए ।
और यह असंभव भी नहीं, बशर्ते
हम केवल बादलों की घड़घड़ाहट ही न सुनें
आसमान का मौन अनहद संगीत भी
सुनने की जिज्ञासा रखें और
सारे विषाक्त प्रदूषण को लीलकर भी
उसकी तरह ही
बेअसर बने रहने की कला सीखें ।

□

घर : एक पैगाम है

यह ड्राइंगरूम है
घर का वह हिस्सा—
हमारा चेहरा—
जिसे हमने कलात्मक अभिरुचि से आकार दिया है।
यहाँ पहाड, नदियाँ, झरने, पेडों का
बोध करानेवाले कुछ भव्य चित्र हैं,
अत्यन्त सुखद पीठिकाएँ हैं
उजाले को आवरित कर शीतल बनाने वाले
पर्दे हैं,
रहस्य में उलझे सत्य-सी
कुछ पेंटिंग्ज़ हैं।
यही वह जगह है
जहाँ बैठकर आप हमारे व्यक्तित्व को आंक सकते हैं,
यह बैठक है
जैसे हमारा चेतन-मन।
और यह है शयन-कक्ष
इसका पर्दा आगंतुकों के समक्ष कम ही उठता है,
हमारे आदिम असभ्य और
परिष्कृत व सभ्य मूल्यों को साकार करता
हमारी सांस्कृतिक हीनता का दस्तावेज है
यह शयनकक्ष
जैसे हमारा अर्द्ध-चेतन-मन।
इसे कहते हैं तलघर—
हर बेकार वस्तु का संग्रहालय

पीढ़ियों की पीड़ा ढोता अपंग सामान
एक प्रकार से घर का कूड़ादान है यह
जिसमें हमारे व्यक्तित्व के बीज छिपे हैं
हमारे संस्कारों की ऐतिहासिक किताब-सा है यह
तलघर
जैसे हमारा अवचेतन मन।
यह है इस आवास की दूसरी मंज़िल
जो इसे भव्यता देती है
नींव की कमज़ोरी को ढकती है,
कमरों के डिस्टेम्पर से झांकता है
हमारा साफ-सुथरा व्यक्तित्व,
बिजली के उलझे तार
हमारी अनेक ग्रन्थियों से फैले हैं पर
बड़ी बड़ी खुली खिड़कियों से आनेवाली ताज़ा हवा
हमारी श्रेष्ठता-ग्रन्थि को पुष्ट करती हुयी
प्रच्छन्न रूप से आपको अपनी हीन ग्रन्थि का
बोध करा जाती है।
हर आदमी में एक घर छिपा होता है
कई बार यह छिपा हुआ घर हमें
पूर्वजों से विरासत में सहज ही मिल जाता है।
तब हम इस चिंता में निमग्न रहते हैं कि
इसे कैसे बदला जाए कि घर
मेरा अपना लगे।
हम घर में रखे सामान की दिशाएं बदल बदल कर
स्वयं को प्रवंचित करते हैं लेकिन,
हम घर का आकार या दिशा
नहीं बदल सकते।
हमें नहीं भूलना चाहिए कि

प्रस्तुतः घर
पूर्वजों का एक पैगाम है
हमारे नाम ।
हर व्यक्तित्व का एक शिल्प होता है
यही शिल्प हर मकान को पृथक करता है,
मकानों के भी अनेक व्यक्तित्व हैं :
साधारण, जर्जर, अंधेरे-सीलनभरे, बदबूदार-तंग
या विशाल, खुले-उन्मुक्त, भव्य, मुस्कुराते-जिंदादिल ।
हर आवास में
मन्दिर-मस्जिद-गुरूद्वारा होता है ।
घण्टियां चाहे बजें या नहीं
लेकिन मानवीयता की गंध
जलते हुए कपूर के समान
आसपास फैलती ही है ।
हमारी अनुपस्थिति में भी घर
हमारे व्यक्तित्व की
हर एक नाड़ी, शिरा और धमनी का परिचय देता है ।
हम कहीं भी जाएं
घर हमें खुद से अलग नहीं करता ।
हर मकान की अपनी एक गंध होती है
जो हमें बरबस अपनी तरफ खींच सकती है
और विरत भी कर सकती है ।
मकान हमें हरसम्भव सुविधा देता है
बदले में केवल
हमारे व्यक्तित्व की गंध खुद में बसा लेता है ।
गंध का यह रिश्ता
बड़ा प्रगाढ़ होता है
इतना कि आवश्यकता पड़ने पर

जासूसी लोगों के प्रशिक्षित कुत्ते
इस गन्धमार्ग का अनुसरण कर
हमें खोज लेते है,
तब हमारे अभाव में
घर आत्मालाप में डूबा रहता है
पर फिर भी हमारे व्यक्तित्व की गंध को
कभी विस्मृत नहीं करता।
वाकई घर
एक पैगाम है, हमारा—
अपने-अपने बच्चों के नाम।

ऐसा भी सूर्योदय

ऐसा कभी कभी ही हुआ है
जब मैं सूर्योदय का साक्षी रहा हूँ
पर कभी अपनी समग्र चेतनता से
ऐसा भी साक्षी रहा हूँ, जब रात—
घिसी चादर सी
मेरी आँखों के सामने ही फटी है।
इस मैली कुचेली चादर से ही
सूर्योदय के पहले उदित हुआ है
हकरा नाम का लडका।
अपनी गुड़मुड़ी तोड़
उजलते अंधेरे में
थूक का कुल्ला करता हुआ उठ खड़ा होता है।
यान्त्रिक रफ्तार से वह
अंगीठी जलाता है, धुले पतीले में
चाय का पानी चढाता है और
अन्वेषक निगाहों से ग्राहकों को खोजता है।
अंगारों की दहाती रोशनी में
हकरा के हाथों की मटमैले कागज सी सूखी चमड़ी
अपनी कुन्दता में भी चमकती है।
हल्के सूती कपड़े से बना
सेफ्टी पिनों से बन्द किया
ऊपर-नीचे पायचों वाला
उसका नया कमीज़

भारतीय वर्ग–भेद को
प्रायोगिक परीक्षण–सा प्रमाणित करता है।
उजाला नील लगे कपड़े–सा
साफ होने लगा है।
उड़ती राख और धुँआ
विकासमान इस उजाले को
बिना दूध की कॉफी–सा कसैला बना जाते हैं।
बिना किसी कारण
मेरी आँखें जैसे वेल्डिंग रॉड की चमक से
चुंधियाने लगती हैं।
मैली गिलास में भरी गरम चाय
इस सूर्योदय को बड़ा मोहक बना जाती है
मेरे लिए।

☐

इसका पानी तिक्त है
क्योंकि,
मंथन में उसकी सारी मधुरता
अमृत के प्रतीक रूप में दोहित कर ली गयी,
शेष रहे केवल लवण
भला जल मधुर कैसे होता ?
जल चाहे तिक्त हो
पर मधुरता को इसने विस्मृत नही किया है,
मौसम का नियन्ता है समुद्र,
मौसम—
जो हमें ताज़ापन की अनुभूति देता है और
हमें भीतर गहरे तक रंग जाता है
अपनी रागात्मकता में।

□

सुकरात के साथ यही हुआ

अग्नि की शुद्धता का प्रमाण है यह
कि वह
निर्धूम हो।
शब्दों का विलास तो धुआँ है
वह कैसे हो सकता है कविता ?
न सही कविता
फिर भी कभी कभी विलसित होना
मुझे प्रिय लगता है।
आम आदमी शब्दों को
सिक्कों की तरह
काम में लेता है, जबकि
सर्जक
शब्द के मर्म और प्रकृति को पहचानकर
उसे औषध के रूप में काम लेता है और
अनुभूति की शुद्धता का आग्रह
वह बनाए रखता है।
पहाड़ों पर चरती गायें
धरती पर खड़े दर्शक को,
छोटी छोटी प्रतिमाओं-सी लगती हैं
यही तो सीमा है
हमारी आँख की।
पतंग उड़ाना और
दूसरी पतंगों को काटकर हर्षित होना
छद्म संतोष है,

जो माजे से कटी हमारी उगली की पीड़ा को
भूलने मे
हमारी बड़ी मदद करता है।
नीद मे भी हम
तकिया इसीलिए लगाते हैं कि
अचेतन अवस्था मे भी
हमारा सर
ऊंचा बना रहे।
छत पर बैठकर
टांगें हिलाने वाले लोग
मृत्यु को भूलने का अनजाने ही
प्रयत्न करते रहते हैं।
आदमी से कम समय तक
गर्भ मे रह कर भी
कई जीव-जन्तु और वृक्ष
मनुष्य से अधिक दीर्घजीवी होते हैं
पर विवेकी नही।
यही तथ्य तो हमे
प्राणि-जगत में विशिष्टता देता है।
जो आदमी लम्बे-चौड़े
वक्तव्य देता रहता है,
उस जादूगर के समान है जो
हमें विस्मित तो करता है, साथ में
प्रवंचित भी।
वह हमें
हाथ की सफाई से
झूठ के समुद्र में धक्का देता है।
जीवन के सफल क्षण

दूसरों मे ईर्षा जगा सकते हैं
पर यह तथ्य भी विस्मृत करने योग्य नही है कि
मेरी निजी विफलता के क्षणो ने ही
मुझे वह विराट ऊर्जा दी है,
जिसके स्रोत पहाड़ी नालो-से
न तो दनदनाते हैं और
न ही सूखते हैं
सदैव स्रवित रहते हैं।
जो तैरना नही जानता
वह देखा करता है
तालाब और झील के सपने।
झील में खिलते हैं कमल
वह देखता है।
नही देखता
तालाब के तल में सहस्र परतो में जमा कीचड़।
इसलिए और परिधान का
कोई रिश्ता नही है
भीतरी व्यक्तित्व से।
सुन्दर चेहरो में
बीमार दांत मैंने बहुत देखे हैं, और
पस्त जिस्मों में
समझ के आंतरिक सौन्दर्य के
चक्रवात भी मैंने पाए है,
और
चाद को भी हासिया बनकर
खुशियो की फ़सल काटते देखा है।
इस प्रदूषण ने
कर दिया है दूषित

शब्दों तक को
तुम अपने फंफड़ों की
न करो चिंता इतनी।
छह दिन ही बहुत हैं इसके निमित्त
एक दिन तो रहने दो ग़ज़ल के लिए
क्योंकि सभी निषेधों से परे है—इतवार।
प्रतिरोध
जो हम
इच्छाओं पर लगाते हैं
क्या नहीं है ग़ैर-मतलब ?
ढीली चूलों वाले दरवाज़े पर
जड़े मज़बूत ताले
नहीं कर पाते रक्षा—घर की।
बिना लालसा से किया गया कार्य
सम्भवतः बना देता है—मृत्युंजयी,
सूर्य इसका प्रमाण है।
आस्था से पिया जाए
यदि ज़हर को भी
तो वह भी
दे जाता है अमरत्व
सुकरात के साथ यही तो हुआ।